Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2020 SHISRRJ | Volume 3 | Issue 3 | ISSN : 2581- 6306

संस्कृत साहित्य में राष्ट्रियता की भावना

डा0 प्रभात कुमार
असिस्टेन्ट प्रोफेसर संस्कृत–विभाग नेहरू ग्राम भारती डीम्ड विश्वविद्यालय प्रयागराज।

सामान्यतया यह समझा जाता है कि राष्ट्रीय भावना की कल्पना विदेशों की उपज है और अंग्रेजों के इस देश में आने पर उन्हीं के सम्पर्क में इस पवित्र भावना का उदय भारतवर्ष में हुआ, परन्तु यह मान्यता एकदम भ्रान्त है। देश–प्रेम, देशोन्नति तथा राष्ट्रीय समुदाय की भावना संस्कृत भाषा में निबद्ध साहित्य में पूर्ण रीति से विकसित है। संस्कृत साहित्य ही स्वतन्त्र भारत के साहित्यिक चिन्तन की पूर्ण अभिव्यक्ति है। संस्कृत साहितय के उद्‌गम का युग भारतवर्ष की पूर्ण स्वतंत्रता का काल है, भारतवर्ष विश्वभर में उन्नति की चरम सीमा पर पहुंचा था, जब इसके अदम्य उत्साही सन्तान अपनी भुजाओं के बल पर भारतीय संस्कृति की पताका सर्वत्र फैला रहे थे तब इसका 'विश्वबन्धुत्व' का संदेश संसार के सभ्य मानवों तथा जातियों को भौतिक एवं आध्यात्मिक विकास की ओर अग्रसर कर रहा था।

सच पूछिये तो संस्कृत साहित्य से इस विषय में तुलना करने पर भारत की अन्य प्रान्तीय भाषाओं में निबद्ध साहित्य बहुत ही फीका तथा प्रभावहीन प्रतीत होगा, क्योंकि वह तो पराधीनता के युग की अभिव्यक्ति है और यही कारण है कि इन साहित्यों में भौतिक जीवन के प्रति वह उल्लास, भविष्य की ओर वह आशावाद तथा आध्यात्मिक जीवन की ओर वह हार्दिक अनुराग दृष्टिगोचर नहीं होता, जो संस्कृत–साहित्य की निजी सम्पत्ति है। फलतः संस्कृत–साहित्य में राष्ट्रमण्डल की भावना, एक राष्ट्र की कल्पना, राष्ट्र को जानने की बुद्धि पूर्ण रूप से पायी जाती है।

वैदिक युग से ही यह कल्पना बद्धमूल है कि भारतीय आर्य "सप्त–सिन्धु'' प्रदेश के ही निवासी हैं, कहीं बाहर से आकर यहाँ बसने वाले जीव नहीं है। फलतः इस मातृभूमि के प्रति उनकी अनुरक्ति होना स्वाभाविक ही है। वेद में यह पृथ्वी माता के रूप में, देवता के रूप में वर्णित है। प्राचीनतम् द्योतमान देव दो ही है– एक तो है हमारे ऊपर प्रकाशमान आकाश, जो पितृदेव है तथा दूसरा है प्राणियों को आश्रय देनेवाली पृथ्वी, जो मातृ–रूपा मानी जाती है। वैदिक आर्यों के ये ही दोनों प्राचीनतम् देव है। माता–पिता की यह युग्म कल्पना 'द्यौष्पितर' तथा पृथ्वी माता के रूप में हमें वेदों के मन्त्रों में बहुशः उपलब्ध होती है। इस उदात्त कल्पना का प्रथम दर्शन हमें ऋग्वेद के ही मन्त्रों में मिलता है। कुछ मन्त्रों को लीजिये–

द्यौर्मे पिता जनिता[1]–

द्यौर्नः पिता जनिता[2]–

द्यौर्मे पिता पृथ्वी मे माता[3]–

इयं मे नाभिरिह मे सधस्थम्[4] –

अथर्ववेद का पृथ्वी–सूक्त तो वैदिक आर्यों के राष्ट्र–प्रेम का समुज्ज्वल प्रतीक है। इस पूरे सूक्त (अथर्व 12 काण्ड, 1 सूक्त) में पृथ्वी के स्वरूप का जो साहित्यिक वर्णन है वह आर्यों की देश–भक्ति का सरस परिचायक है। पृथ्वी की महिमा का यह महनीय विवरण स्वातंष्य के प्रेमी तथा स्वच्छन्दता के रसिक आथर्वण ऋषि का हृदयोद्गार है। इस सूक्त के ऋषि ने 63 मन्त्रों में मातृरूपिणी भूमि को समग्र पार्थिव पदार्थों की जननी तथा पोषिका के रूप में उद्घोषित किया है तथा प्रजा का समस्त बुराइयों क्लेशों तथा अनर्थों से बचने और सुख–सम्पत्ति की वृष्टि करने के लिये भव्य प्रार्थना की है एक–दो दृष्टान्तों से इस माहात्म्य को परखिये–

यामश्विनावमिमातां विष्णुर्यस्यां विचक्रमे।

इन्द्रो यां चक्र आत्मनेऽनमित्रां शचीपतिः।।

सा नो भूमिर्विसृजतां माता पुत्राय मे पयः।। [5]

अर्थात् जिसे अश्विन ने नापा, जिस पर विष्णु ने अपने पादप्रक्षेपों को रखा, जिसे सामर्थ्य के स्वामी इन्द्र ने अपने वास्ते शत्रुओं से रहित बनाया, वह भूमि मुझे इस प्रकार दूध दे जिस

प्रकार माँ अपने बेटे को पिलाती है। एक दूसरे मन्त्र में पृथ्वी के ऊपर मानवों के नाचने–गाने, कुदने–फाँदने और लडने–भिडने का बड़ा ही स्वाभाविक वर्णन है। जहाँ युद्ध के समय सैनिकों का गर्जन होता है तथा नगाड़ा बजता है, वह पृथ्वी हमारे सब शत्रुओं को भगा डाले और हमारे शत्रुओं का नाश कर हमें शुत्रविहीन कर दे–

यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या व्यैलवाः।

युध्यन्ते यस्यामाक्रान्दो यस्यां नदति दुन्दुभिः।।

सा नो भूमिः प्रणुदतां सपत्नान्

असपत्नं मां पृथिवी कृणोतु।।[6]

कितना उल्लासमय उद्‌गार है वैदिक ऋषि का और कितना आशा है भौतिक जीवन को सुखमय बनाने की। वैदिक आर्य सर्वदा भौतिक जीवन को सुन्दर, सुखमय तथा उपयोगी बनाने की प्रार्थना अपने इष्ट देवताओं से किया करता था। जिस पृथ्वी पर उसका निवास था तथा जो उसके भोग–विलास और सुख–समृद्धि की जननी थी उसे पूजनीया माता के समान आदर की दृष्टि से देखना नितान्त स्वाभाविक था।

ऋग्वेद का नदी–सूक्त– अपने देश की पवित्र नदियों के प्रति उच्च आग्रह, हार्दिक अनुराग तथा प्रगाढ़ प्रेम का प्रतिनिधित्व करता है। इस मन्त्र में गंगा–यमुना का प्रथमतः उल्लेख इसका स्पष्ट प्रतीक है कि ये नदियाँ ऋग्वेदीय युग में भी पवित्रता की दृष्टि से देखी जाती थी।

इमं मे गंगे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या।

असिक्न्या मरुद्‌वृधे वितस्तयाऽर्जिकीये शृणुह्या सुषोमया।।[7]

इस सूक्त के अन्य मन्त्रों में भारतवर्ष की नदियों के नाम है और उनसे ऋषि कामनापूर्ति के लिए विनय कर रहा है । फलतः वैदिक आर्यों की दृष्टि में ये नदियाँ कोई निर्जीव केवल जलमयी वस्तुयें नहीं थी, प्रत्युत् वे कल्याण करने वाली सजीव देवता थीं और इसलिए उनसे प्रार्थना सुनने तथा कामना पूरा करने के लिए इतना आग्रह किया गया है। आर्य देश की एकता तथा अखण्डता की इससे बढ़कर शोभन कल्पना क्या की जा सकती है?

पुराणों का प्रामाण्य– पुराणों में यह राष्ट्र–भावना और भी मुखरित होती है तथा राष्ट्र के एतत्व और देश–भक्ति का सरस राग स्पष्टतः सुनायी पड़ता है। प्रत्येक पुराण भारतवर्ष को एक इकाई के रूप में मानता है तथा इसके विभिन्न प्रान्तों, नदियों, पर्वतों, सरोवरों, तीर्थों, आश्रमों तथा नगरों का बड़ा ही विशद् और यथार्थ वर्णन प्रस्तुत करने में वह सर्वदा जागरूक रहता है। इसलिए प्रत्येक पुराण में ''भुवनकोष' का विषय वर्ण्य विषयों में सम्मिलित किया है। भारतवर्ष की अखण्डता तथा देश–प्रेम का यह राग विष्णुपुराण तथा भागवत के प्रख्यात पद्यों में बड़ी सुन्दरता से अपनी अभिव्यक्ति पा रहा है। देवता लोग भारतवासियों की धन्यता के गीत गाते है, क्योंकि यह भारत देश स्वर्ग तथा मोक्ष पाने का सुखद पन्था है, और देवता होने के बाद भी यहाँ जन्म लेकर मानव अपने परम कल्याण का सम्पादन करता है।

गायन्ति देवाः खलु गीतकानि धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।

स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात् ।।[8]

भागवत के शब्दों में तो स्वर्गलोक में कल्प की आयु पाने की अपेक्षा भारतवर्ष में क्षण भर की आयु पाना श्रेयस्कर है, क्योंकि इस कर्मभूमि के ऊपर क्षणभर में किये गये कर्मों का संन्यास कर मानव भगवान् नारायण के अभयपद को सद्यः प्राप्त कर लेता है–

कल्पायुषां स्थानजायत् पुनर्भवात् क्षणायुषां भारतभूजयो वरम्।

क्षणेन मयेन कृतं मनस्विनः संन्यस्य संयान्त्यभयं पदं हरेः।।[9]

भारतवर्ष में जन्म लेना देवताओं की भी ईर्ष्या का विषय है। देवता लोग भारत में जन्म लेने के लिये तरसा करते हैं और भारतवासियों के शोभन कर्मों की भूरि–भूरि प्रशंसा किया करते हैं कि भारतवासियों के ऊपर तो स्वयं भगवान् ही प्रसन्न रहते हैं। भारत के प्रांगण में जन्म लेना मुकुन्द की सेवा का मुख्य उपाय है, जिससे मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है और इसलिये भारत में उत्पन्न होने के लिए हमारी भी स्पृहा है–

अहो अमीषां किमकारि शोभनं प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयं हरिः ।

यैर्जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे मुकुन्दसेवौपयिक स्पृहा हि नः ।।[10]

पूजा के अवसर पर धार्मिक कृत्यों के विधान–प्रसंग में भी राष्ट्रीय भावना की पर्याप्त अभिव्यक्ति होती है। संकल्प के विधान का क्या रहस्य है? संकल्प के अवसर पर प्रत्येक उपासक अपने सामने अखण्ड भारत का भौगोलिक चित्र प्रस्तुत करता है। वह अपने स्नान या दान के संकल्पवाक्य में देश, काल, कर्ता तथा कर्म इन चारों वस्तुओं का एक साथ योग देकर अपने आपको बृहत्तर भारत का एक प्राणी बतला कर गर्व का अनुभव करता है। वह जानता है कि वह जिस अविमुक्त क्षेत्र वाराणसी में भागीरथी में स्नान कर रहा है, वह जम्बूद्वीप के भरतखण्ड तथा भारतवर्ष के 'कुमारिल खण्ड' के अन्तर्गत विद्यमान तीर्थ है। भारतवर्ष को ही गुप्तकाल में 'कुमारद्वीप' की संज्ञा प्रदान की गयी थी, क्योंकि भारतवर्ष की लम्बाई दक्षिण में 'कन्याकुमारी से लेकर उत्तर में गंगा के उद्‌गम स्थान तक मानी जाती थी– **आयामस्तु कुमारीतो गंगायाः प्रवहावधिः ।**[11]

स्नान के समय जिस क्षण स्नानार्थी भारत की सप्त सिन्धुओं से अपने जल में समावेश के लिये इस मन्त्र में प्रार्थना करता है, उस समय उसके मानस–पटल पर भारतवर्ष के अखण्ड रूप का चित्र प्रस्तुत हो जाता है–

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।

नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु।।[12]

पूजा के समय उपयुक्त वस्त्र के विधान से भी स्पष्ट है कि भारत में खद्दर का प्रचार प्राचीन काल से था, क्योंकि शास्त्र का आदेश था कि जो वस्त्र उस समय पहना जावे, उसे न तो जला होना चाहिये, न मूषक के द्वारा दूषित होना चाहिये, न सिला हुआ होना चाहिये, न पुराना होना चाहिये, इसके अतिरिक्त उसे विदेश में न बनकर स्वदेश में ही बना होना चाहिये। धर्मशास्त्र के प्रणेताओं का यह विशेष आग्रह है कि पूजा के अवसर पर स्वदेशी वस्त्र ही पहने जायें। उस युग में बाहर से वस्त्रों का आना भले ही सिद्ध हो, पर धार्मिक अवसरों पर स्वदेशी तथा स्वकीय वस्त्र ही पहने जाते थे। फलतः भारत में स्वदेशी वस्त्रों का व्यवहार प्राचीन काल से चला आता है। धर्मशास्त्रीय श्लोक यह है –

न स्यूतेन न दग्धेन पारक्येण विशेषतः।

मूषकोत्कीर्णजीर्णेन कर्म कुर्याद् विचक्षणः ।।

इस प्रकार धर्मशास्त्र में भारतवर्ष अखण्डता, स्वदेशी वस्त्र (खद्दर) का धारण तथा सप्त–सिन्धुओं का मांगलिक स्मरण इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि धार्मिक विधि–विधानों में भी राष्ट्रीय भावना का भव्य प्रसार था। कालिदास का प्रामाण्य– कालिदास हमारे भारतवर्ष के महनीय राष्ट्रीय कवि हैं। अतः उनके काव्यो में देश–प्रेम की भव्य भावना की सत्ता मिलने पर हमें आश्चर्य नहीं होता। कालिदास उज्जयिनी के महाकाल के उपासक थे और इसलिए शिव की पूजा–अर्चना के प्रति उनका आग्रह रखना स्वाभाविक है। कालिदास ने शंकर की अष्टमूर्तियों का उल्लेख अपने काव्य तथा नाटकों में अनेक बार किया है। शाकुन्तल की नान्दी में भगवान् शिव के प्रत्यक्ष दृश्य मूर्तियों का क्रमबद्ध निर्देश है। मालविकाग्निमित्र की नान्दी में भी अष्टमूर्ति का संकेत है– **"अष्टाभिर्यस्य कस्न जगदपि तनुभिर्बिभ्रतो नाभिमानः ।"** इस प्रकार कुमारसम्भव (6/76) में भी इनका उल्लेख है। इससे स्पष्ट है कि कालिदास ने शिव की अष्टमूर्तियों को उपासना के प्रति अपना विशेष आग्रह दिखलाया है। इसका रहस्य क्या है?

इन मूर्तियों के नाम हैं– सूर्य, चन्द्र, यजमान, पृथ्वी, जल, तेज, वायु तथा आकाश। इन मूर्तियों के प्रतीक शिवलिङ्गों का स्थापन भारतवर्ष के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक उपलब्ध होता है। इनमें यजमान की मूर्ति का प्रतीक शिवलिङ्ग नेपाल में पशुपतिनाथ माने जाते हैं तथा सबसे दक्षिण में चिदम्बरम् स्थान में आकाशमूर्ति का प्रतिनिधि शिवलिङ्ग विराजमान है। इसी प्रकार चन्द्रमूर्ति के प्रतीक दो शिवलिङ्ग विद्यमान है– एक तो प्रख्यात सोमनाथ का ऐतिहासिक शिवलिङ्ग गुजरात में विद्यमान है तथा दूसरा चन्द्रनाथ का शिवलिंग चट्टग्राम (चटगाँव) में विराजमान है। इसी प्रकार अन्य मूर्तियों के प्रतीक रूप शिवलिंग भारतवर्ष के विभिन्न स्थानों में उपलब्ध होते हैं जिनका वर्णन पुराणों में दिया गया है। इस प्रकार नेपाल के पशुपतिनाथ से लेकर दक्षिण के चिदम्बरम् तक तथा पश्चिम में सोमनाथ से लेकर पूरब में चन्द्रनाथ (चटगाँव जिला, बंगला देश) तक भगवान् शंकर की मूर्तियाँ स्थापित पायी जाती है। अतः इन अष्टमूर्तियों के धारणकर्ता शंकर की स्तुति कालिदास के हृदय में अखण्ड भारत की

उज्ज्वल परिचायिका है। यह कवि समस्त भारत को एक अखण्ड अविभाज्य रूप में मानता तथा जानता है।

इतना ही नहीं, वह भारतवर्ष के भालस्थल पर विराजमान हिमालय का प्रशंसक कवि है। ऐसा कौन सच्चा भारतीय कवि होगा जिसके हृदय में हिमालय अपनी सुन्दरता, उदारता तथा भव्यता के कारण प्रकृष्ट प्रभाव नहीं जमाता? कालिदास की कविता में हिमालय अपने पूर्ण वैभव के साथ विलसित है। रघुवंश, विक्रमोर्वशीय, शाकुन्तल में तो प्रसंगवश हिमालय विराजमान है, परन्तु कुमारसम्भव तो हिमालय के सौन्दर्य तथा शोभा का ही कमनीय काव्य है। वहाँ हिमालय एक निर्जीव प्रस्तर–खण्ड न होकर सजीव देवतात्मा है, जिसके हिमाच्छादित कैलाश के ऊपर भूतभावन भगवान् शंकर, पार्वती के साथ अपनी अखण्ड तपस्या में निरत चित्रित किये गये हैं। कालिदास की प्रतिभा के आलोक में हिमालय का वह चित्र प्रकाशित होता है जिसकी पवित्रता, उदारता तथा प्रभा से भारतीय संस्कृति सद्यः आलोकित हो उठती है। कालिदास हिमालय के वैज्ञानिक, भौतिक तथा आध्यात्मिक– इन समस्त रूपों का सांकेतिक परिचय देते हैं। जिस हिमालय का भौतिक रूप इस श्लोक में चित्रित है –

आमेखलं संचरतां घनानां छायामधः सानुगतां निषेव्य।

उद्वेजिता वृष्टिमिराश्रयन्ते श्रृङ्गाणि यस्यातपवन्ति सिद्धाः ।। [13]

वही हिमालय धातु–रूपी लाल होठों, देवदारु–रूपी बाहुओं तथा शिलारूपी वक्षः स्थल को धारण करने वाला एक महनीय जंगम पुरुष के रूप में भी अपनी अभिव्यक्ति पा रहा है इस पद्य में–

धातुताम्रधरः प्राशुर्देवदारु बृहद्भुजः ।

प्रकृत्यैव शिलोरस्कः सुव्यक्तो हिमवानिति।।[14]

इस प्रकार संस्कृत साहित्य में भारतीय राष्ट्र की उन्नत कल्पना के दर्शन हमें नाना युगों में प्राप्त होते हैं। राष्ट्र की अभ्युन्नति के निमित्त शुक्ल– यजुर्वेद के एक मन्त्र में राष्ट्र में विभिन्न अंगों की अभिवृद्धि के लिये जो सुन्दर प्रार्थना उपलब्ध है वह आज भी– इतनी शताब्दियों के

बीतने पर भी– उसी प्रकार अभिनन्दनीय है जिस प्रकार उस वैदिक युग में। आज स्वतंत्र भारत की यही सांस्कतिक प्रार्थना होनी चाहिये।

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम् आ राष्ट्र राजन्यः शूर इष– व्योऽतिव्याधी महारथो जायताम् । दोग्धी धेनुर्वोढाऽनड़वान, आशः सप्तिः, परन्धिर्योषा, जिष्णू रथेष्ठा सभेयो यवाऽस्य यजमानस्य वीरो जायताम् निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु। फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्ताम। योगक्षेमो नः कल्पताम।[15]

हे भगवन्! हमारे राष्ट्र में ब्राह्मण ब्राह्मतेज से सम्पन्न हों। क्षत्रिय, शूरवीर, बाण चलाने में कुशल, शत्रुओं का संहार करने वाले तथा महारथी उत्पन्न हों। धेनू दूध देने वाली हो। बैल बोझा ढोने वाला हो। घोड़ा शीघ्रगामी हो। नारी सुन्दर गात्रवाली तथा रमणीय गुणवाली हो। रथ पर बैठकर समरांगण में उतरने वाला योद्धा विजयी बने। युवा सभा में बैठने की योग्यता रखने वाला हो, अर्थात् सभ्य–शिष्ट, गुणी और फलयुक्त हों तथा समय पर पक्व हों। हमारा योगक्षेत्र सदा सम्पन्न हो, अर्थात् अलभ्य वस्तु का लाभ हो तथा लभ्य वस्तु की ठीक–ठीक वृद्धि हो। इस वैदिक मन्त्र में जिस आदर्श का चित्र प्रस्तुत किया गया है। वह नितान्त श्लाघनीय तथा अनुकरणीय है। वैदिक ऋषि की दृष्टि राष्ट्र के प्रत्येक अंग पर पड़ती है पशुओं से लेकर युवकों तक। वह प्रत्येक पदार्थ के अभ्युदय की कामना करता है। हमारे युवकों को इस मन्त्र के 'सभेयो युवा वाक्य पर विशेष ध्यान देना चाहिए। 'सभेय' शब्द की व्युत्पत्ति है– सभायां साधुः सभेयः। सभा में निपुण होना ही युवक की भूयसी विशिष्टता है। सभा में ठीक ढंग से बैठना–उठना, उसके नियमों से परिचित होना, अनुशासन मानना, बोलने की कला का पारखी बनना आदि अनेक विशिष्ट गुणों की सत्ता का संकेत 'सभेय' शब्द में विद्यमान है। वैदिक 'सभेय' शब्द का प्रतिनिधि शब्द लौकिक संस्कृत का 'सभ्य' शब्द है। इस प्रकार सभ्य बनने की मुख्य पहिचान है सभा में निपुण होना और यही सभ्यता का मुख्य आधार है।

निष्कर्ष यह है कि संस्कृत के कवियों की मनोरम वाणी में भारत की राष्ट्रियता का अपूर्व सन्देश उल्लसित होता है। वे भारत को एक राष्ट्र ही नहीं मानते, प्रत्युत् उसे स्वर्ग से भी

बढ़कर मानते है।। कर्मभूमि भारत भोगभूमि स्वर्ग से निःसन्देह महनीय, विशाल तथा महत्तम है– इस तथ्य का स्पष्ट वर्णन संस्कृत काव्यों में विशद्ता के साथ किया गया है।

सन्दर्भ सूची

1. ऋग्वेद–1/164/33,
2. अथर्ववेद–9/10/12,
3. काठक संहिता–37/15/16
4. ऋग्वेद–10/61/19
5. अथर्ववेद–12/1
6. अथर्ववेद–12/41
7. ऋक् 10/75
8. विष्णुपुराण–2/3/25
9. भाग0 5/19/23
10. भाग0 5/19/21
11. मत्स्य पुराण–114/10
12. मत्स्यपुराण
13. कुमारसम्भवम्–1/5
14. कुमारसम्भवम्–6/5
15. शुक्ल यजुर्वेद